International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 03(I), July - September, 2022, pp. 210-213

प्रेमचन्द की कहानियां और यथार्थवाद

डॉ. पीयूष कुमार पारीक*

सार

मुंशी प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट कहा जाता है और उनकी गणना विश्व के महानतम उपन्यासकारों में होती है लेकिन सामाजिक यथार्थ और समस्याओं के चित्रण तथा गहरी जनसंपृक्ति की दृष्टि से उनकी कहानियां भी बेजोड़ हैं और पूर्ण कलात्मकता लिए हुए है। अपनी लगभग 300 कहानियों में जैसे प्रेमचंद ने समकालीन उत्तर भारत की सजीव छवि का अंकन किया है। 1917 से 1936 तक की कहानी का सफर हमें उस दौर की करवट बदलती हुई राजनीति, समाज और संस्कृति सभी का यथार्थ परिचय देता है। उनकी शुरुआती कहानियां हालांकि इतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक एवं आदर्शवाद से युक्त है जैसे ''बड़े घर की बेटी'', ''पंच परमेश्वर'', ''नमक का दरोगा'' या ''उपदेश'' आदि कहानियां । ''प्रेम प्रसून'' कहानी संग्रह की भूमिका में स्वयं प्रेमचंद ने लिखा है कि हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है। समय के साथ साथ उनकी कहानियों की विषय वस्तु, लेखक की दृष्टि, भाषा एवं शिल्प निरंतर परिवर्तित होते देखे जा सकते हैं। यहां आकर कथानक या घटनाचक्र गौण हो जाता है अपितु कहानी की मूल संवेदना या थीम सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है। ''नशा'', ''पूस की रात'' और ''कफन'' जैसी कहानियां उनकी बदलती दृष्टि का सबसे ताकतवर उदाहरण है। इन कहानियों में प्रेमचंद का यथार्थवादी कलाकार अपनी चरम सीमा पर पहुंचा हुआ जान पड़ता है।

शब्दकोश : *समग्रता, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, हृदय परिवर्तन, अन्तर्जगत, वर्गहीन, सौन्दर्यशास्त्र।*

प्रस्तावना

यथार्थवाद की अभिव्यक्ति जैसी उपन्यास में हो सकती है, वैसी किसी दूसरी विधा में नहीं हो सकती, कहानी में भी नहीं। यथार्थवाद यथार्थ के चित्रण में जिस समग्रता की माँग करता है, उसे कहानी का सीमित केनवास पूरा नहीं कर सकता। यही कारण है कि यथार्थवादी दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यास जितने महत्त्वपूर्ण है, कहानियाँ नहीं। प्रेमचंद ने तीन सौ के लगभग कहानियाँ लिखी हैं, जो 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित हैं। उनमें से प्रतिनिधि कहानियों की चर्चा ही यहाँ की जा सकती है।

प्रेमचंद की कहानियों की विषय–वस्तु लगभग वही है जो उनके उपन्यासों में थी। अपनी आरंभिक कहानियों में वे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की रचना करते प्रतीत होते हैं अर्थात् यहाँ वे समस्या के यथार्थवादी चित्रण से रचना का आरंभ करते हैं और उसे आदर्शवादी समाधान तक ले जाते हैं। भाववादी हृदय–परिवर्तन से प्रेरित कहानियों का अंत यथार्थवाद के आग्रही पाठकों पर अपनी छाप नहीं छोड़ता। 'पंच परमेश्वर', 'डामुल का कैदी', 'नमक का दरोगा', 'बैंक का दीवाला', 'मंत्र' तथा 'उपदेश' जैसी कहानियों में हृदय–परिवर्तन का सूत्र लेकर यथार्थ को आदर्श से मिलाने की चेष्टा की गयी है जिससे उनका यथार्थवाद कमजोर पड़ गया है।

* सह आचार्य, हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, टोंक, राजस्थान।

सामाजिक दायित्व को भावुकता से ज्यादा तवज्जो देने के कारण प्रेमचंद अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण एवं मनोविश्लेषण में उतने सफल नहीं है हालांकि उनकी कहानियां घटनाओं से अधिक चरित्र–चित्रण पर ज्यादा जोर देती है। फिर भी उनकी कुछ कहानियों में वस्तु जगत एवं अन्तर्जगत के यथार्थ का अच्छा संयोग मिलता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से 'बूढ़ी काकी', 'बड़े भाईसाहब', 'नशा', मिस पदमा', 'पिसनहारी का कुआं', तथा 'कुसुम' जैसी कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। 'बड़े भाई साहब' तथा 'बूढ़ी काकी' तो शुद्ध मनोविश्लेषण पर आधारित कहानियां हैं जो व्यक्तिगत कुंठा एवं मनोजगत का प्रकाशन करती है।

प्रेमचंद के यथार्थवाद का असली प्रतिनिधित्व करने वाली कहानियाँ वे है जिनमें वे समस्या का यथार्थवादी चित्रण करते हैं तथा कोई हल या समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश नहीं करते। उनकी अंतिम कहानी 'कफ़न' (1936) उपन्यास 'गोदान' की तरह यथार्थवादी धरातल का उच्चतम प्रतिमान है, डॉ0 नामवर सिंह ने इसे 'घनघोर यथार्थवादी' रचना की संज्ञा दी है। कफन के पात्र घीसू और माधव ऐसे कामचोर, आलसी और निखट्टू हैं जो एक दिन काम कर तीन दिन आराम करते हैं, मजदूरी के बदले चोरी करके पेट भरना अच्छा समझते हैं। इनकी लापरवाही और आलस्य के चलते बुधिया प्रसव–पीड़ा के दौरान ही दम तोड़ देती है। विडंबना वहाँ अपने उत्कर्ष पर पहुँच जाती है जब 'कफन' के लिए उगाहे चन्दे से दोनों शराबखाने में जाकर शराब पीते हैं और दावत उड़ाते हैं। यह कहानी एक यथार्थवादी व्यंग्य है, आर्थिक विषमता से युक्त उस समाज–व्यवस्था पर जिसमें मेहनत कोई और करता है और श्रमफल 'ऊपर वाले' लूट ले जाते हैं। घीसू और माधव की अकर्मण्यता एवं अमानवीयता के लिए कहानी–लेखक सामाजिक–आर्थिक विषमता को मूल कारण के रूप में देखता है और उस पर निर्मम व्यंग्य के साथ कहानी का समापन करता है। राजेंद्र यादव के अनुसार ''..... इन्हें यथार्थवाद के उस रूप की कहानियां भी कहा जा सकता है जहाँ आदमी वर्ग–हीन (डि–क्लास) होने की प्रक्रिया में मानवता–रहित (डि–ह्यूमनाइज़) होता जाता है।''[i] 'पूस की रात' भी इसी प्रवृत्ति की कहानी है जिसमें किसान की गरीबी पूरी तरह परिवेश के माध्यम से चित्रित की गयी है। यह कहानी एक प्रकार का 'रेखाचित्र' मालूम होती है जब लेखक पूस की ठंडी रात में दुर्गन्ध से भरे जबरा कुत्ते को अपनी गोद में चिमटाये खेत की परहेदारी करते किसान हलकू का यथार्थ बिंब रचता है। लेकिन कहानी के अंत में जब हलकू जमींदारी और मालगुजारी की चिंता न करते हुए गन्ने की फसल को जान–बूझकर गायों को खाने देता है और सुबह उठकर खेत को जला हुआ देखकर 'रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा' कहकर खुश होता है तो वह किसान की 'यथार्थ वर्ग–छवि' से दूर चला जाता है। कहानी का अंत यहाँ भी किसान की नाउम्मीदी को ही दिखाता है, जिसने उसकी मानवीय संवेदना को नष्ट कर दिया है।

'शतरंज के खिलाड़ी' भी इसी परंपरा की कहानी है जो वाजिद अली शाह के युग के लखनऊ के विलासी, निष्क्रिय सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करती है, मीर और मिर्जा इस जीवन के प्रतिनिधि पात्र हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा ने कहानी में निहित व्यंग्य को गहराई में जाकर पकड़ा है, वे लिखते हैं– ''शतरंज के खिलाड़ी' में वह 'कला कला के लिए' का खूब मजाक उड़ाते हैं। मिर्जा और मीर उन लोगों में है जिनके लिए अपना मनोरंजन ही सब कुछ है; देश भाड़ में जाये, उन्हें इससे मतलब नहीं। इसीलिए इस कहानी का व्यंग्य इतना तीखा है।''[ii] व्यंग्य के अतिरिक्त परिवेश का अंकन और उसके अनुकूल उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग यथार्थवादी प्रकृति में जान डालने वाले तत्त्व है।

प्रेमचंद की कहानी 'सवा सेर गेहूँ' इस अर्थ में उल्लेखनीय है कि इसमें सामंतवाद से छूटकर पूँजीवादी जाल में फँसते ग्रामीण शंकर की कथा है जिसे सवा सेर गेहूँ के बदले जीवनभर विप्र महाराज की गुलामी करनी पड़ती है। विप्र महाराज यहां पूंजीवाद का प्रतिनिधि चरित्र है जिसे देखकर बालजाक के पात्र पादरी से महाजन बनने वाले रिगू तथा प्रेमचंद के पंडित दातादीन का स्मरण हो आता है। 'प्रेम का उदय' में जरायमपेशा कंजरों के भीतर मौजूद मानवता की अभिव्यक्ति, 'मृतक भोज' में परंपरागत कुरीतियों का विरोध, 'अलगोझा' में टूटते संयुक्त परिवारों का सच, 'ठाकुर का कुआँ तथा 'सद्गति' में दलितों की पीड़ा का चित्रण करने से ये कहानियाँ यथार्थवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं।

प्रेमचंद का यथार्थवाद

प्रेमचंद का यथार्थवाद अपने वास्तविक रूप में उनके उपन्यासों में प्रकट हुआ है, तुलनात्मक रूप से कहानियों में उतना नहीं। प्रेमचंद यथार्थ के नाम पर अपनी दृष्टि को जीवन के अंधकार–पक्ष पर ही केंद्रित करने के पक्ष में नहीं थे अतः उन्होंने प्रारंभिक रचनाओं में यथार्थ को आदर्श से मिलाने की चेष्टा की। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' एवं 'कायाकल्प' जैसे उपन्यासों में उनका यह आग्रह 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के रूप में मौजूद है। बाद में उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है और वे जीवन की सच्चाइयों को उनके वास्तविक एवं वस्तुपरक रूप में देखने लगते हैं। उपन्यासों में 'गोदान' तथा कहानियों में 'कफ़न' (1936) उनकी अंतिम रचना है जिनमें वे सबसे ज्यादा अनुभवी, परिपक्व, निर्भीक एवं यथार्थवादी नजर आते हैं। जहाँ कोई भाववादी हृदय–परिवर्तन अथवा समस्या का समाधान देने का आग्रह प्रबल नहीं है, वे ही रचनाएं उनकी सफल, चर्चित एवं प्रतिनिधि रचनाएं बन सकी हैं। प्रेमचंद का यथार्थवाद उनकी रचनाओं में जिन माध्यमों से प्रकट हुआ है उनमें हम भारतीय पराधीनता का यथार्थ, अंग्रेजी साम्राज्यवाद की कटु आलोचना, जमींदारी तथा महाजनी सभ्यता का विरोध, किसान–जीवन की समस्याओं का चित्रण, किसान–दलित एवं स्त्री का प्रतिरोध तथा प्रतिनिधि परिस्थितियों के बीच प्रतिनिधि चरित्रों का सृजन जैसी विशेषताओं को ले सकते हैं। प्रेमचंद पहले ऐसे रचनाकार हैं जो मनुष्य को परिवेश के साथ नहीं अपितु 'परिवेश में ही' चित्रित करने की कोशिश करते हैं। प्रेमचंद जीवन के तटस्थ आलोचक नहीं है, सामाजिक दायित्व से जुड़े होने के कारण वे टॉल्सटाय की भाँति जनता से गहरे जुड़े हुए रचनाकार हैं। उनके कथा–साहित्य में युग के साथ चलने की अपूर्व क्षमता है क्योंकि उन्होंने 'भोगा हुआ सामाजिक यथार्थ' लिखा है। गाँवों का वर्ग–संघर्ष हो अथवा नगरीय मध्य वर्ग के अंतर्विरोध, आर्थिक विषमता को उनके मूल कारणों में देखकर उन्होंने युग की 'प्राथमिक निर्धारक तथा महत्त्वपूर्ण' समस्याओं को उठाया है। यही सब उनके यथार्थवाद की आधारभूत विशेषताएं हैं जो उन्हें जनवादी कलाकार के रूप में स्थापित करती हैं।

अंतर्विरोधों का चित्रण करने वाला यथार्थवादी कलाकार खुद भी अंतर्विरोधों से ग्रस्त हो सकता है। बालजाक एवं टॉल्सटाय इसके उदाहरण है। कुछ खूबियों के साथ प्रेमचंद का साहित्य भी कुछ खामियों का शिकार है। वे समस्या का जितना यथार्थवादी चित्रण करते हैं, उसके समाधान में उतने ही आदर्शवादी भी हो जाते हैं जबकि एक सच्चे कलाकार को हल या समाधान देने से यथासंभव परहेज करना चाहिए। दूसरी कमी उनमें वहाँ है जहां पर वे किसी रचना का अंत 'हृदय–परिवर्तन' अथवा 'काल्पनिक अंत' से करते हैं। बिना ठोस कारणों के 'भाववादी हृदय–परिवर्तन' यथार्थवाद में स्वीकार्य नहीं है। कहीं–कहीं पर कथाकार, नरेटर अथवा उपदेशक– सूत्रधार के रूप में प्रेमचंद का अनावश्यक रूप में कथा के बीचों बीच 'टपक पड़ना' रचना के यथार्थवाद को नुकसान पहुंचाता है। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व तथा मनोविश्लेषण में तथा समाज–विकास की वैज्ञानिक समझ के क्षेत्र में प्रेमचंद उतने महारथी नहीं है जितना उन जैसे कलाकार को होना चाहिए। साथ ही यह भी सच है कि उपरोक्त खामियाँ उनके परवर्ती और प्रतिनिधि लेखन में (कफन, निर्मला, गोदान आदि) कहीं नजर नहीं आती।

रचनाओं के उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर (अंतिम रचना 'गोदान' और 'कफन' को प्रतिनिधि मानते हुए) प्रेमचंद उस 'आलोचनात्मक–यथार्थवाद' के रचनाकार हैं जो आगे जाकर 'समाजवादी यथार्थवाद' की ओर मुड़ जाता है। शायद इसीलिए उनकी तुलना गोर्की से बहुत की जाती है। वस्तुतः हम प्रेमचंद को 'गोर्की की दिशा में बढ़ता हुआ बालज़ाक' कह सकते हैं।

प्रेमचंद का यथार्थवाद इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उनका रचनाकाल 1918–1936 तक का है, जो कविता में छायावादी काल माना जाता है। साहित्य के 'राजमार्ग' से अलग हटकर उसे यथार्थवाद की ओर मोड़ने का साहस प्रेमचंद जैसा जनता का कलाकार ही कर सकता था। नामवर सिंह के शब्दों में ''प्रेमचंद के हाथों हिंदी उपन्यास साम्राज्यवाद और सामंतवाद के खिलाफ संघर्ष का एक शक्तिशाली हथियार बन गया इस प्रक्रिया में उसने यथार्थवाद का भी एक सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांत के रूप में विकास किया।''[iii]

निष्कर्ष

यह सही है कि यथार्थवादी कलाकार अपने अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति जिस कलात्मकता के साथ उपन्यास विधा में कर सकता है अन्य किसी दूसरी विधा में नहीं कर सकता । टॉलस्टाय, बालजाक और मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास इसकी गवाही देते हैं। प्रेमचंद की कहानी यात्रा का समुचित विश्लेषण करने के बाद यह कहा जा सकता है कि आरंभिक कहानियों को छोड़कर प्रेमचंद की अधिकांश कहानियां उत्तर भारत के समाज, राजनीति, धर्म, अर्थतंत्र, संस्कृति, गांवों, गरीबों, किसानों, स्त्रियों एवं दलितों की महत्वपूर्ण आधारभूत समस्याओं को पूरी दृढ़ता के साथ उठाती है, साथ ही प्रेमचंद के भीतर बैठे महान यथार्थवादी एवं जनवादी कलाकार को भी हमारे सामने प्रस्तुत करती है

संदर्भ ग्रन्थ सूची

---

i राजेन्द्र यादव : कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ0 31

ii डॉ0 रामविलास शर्मा : प्रेमचंद और उनका युग, पृ0 114

iii नामवर सिंह की टिप्पणी, श्याम कश्यप : यथार्थवाद और प्रेमचंद (लेख), आलोचना, अंक– अक्टू.–दिस. 1979, पृ0 90–91

❖◆❖